chapter. 8

:: अष्टम् अध्याय ::

:: उपसंहार ::

WONDER

:: अष्टम अध्याय ::

: उपसंहार :

किसी भी देश या भाषा का साहित्य उसकी सांस्कृतिक अस्मिता की पहचान बनता है । हिन्दी साहित्य का महत्व इस दृष्टि से अपरिहार्य है । हिन्दी के आदिकाल का साहित्य अत्यन्त समृद्ध और संपन्न है । उसमें सरहपा , गोरख , स्वयंभू , हेमचन्द्राचार्य, चन्द वरदायी , जगनिक , अब्दुल रहमान , अमीर खुसरो तथा विद्यापति जैसे कालजयी कवि हमें प्राप्त होते हैं । "रासो" आदि काल का गौरव-ग्रन्थ है । उसे हिन्दी का प्रथम महाकाव्य होने का गौरव प्राप्त है । "सिद्धहेम शब्दानुशासन" हमारा प्रथम विश्वकोश (Encyclopaedia) है । कोमलकान्त पदावली से युक्त विद्यापति की पदावली हिन्दी साहित्य का श्रृंगार है । अनेक नये काव्य प्रकारों की पहल करके अमीर खुसरो ने हिन्दी

साहित्य के भंडार को भरा है । हिन्दी साहित्य-गगन के सूर्य और चन्द्र यदि सूर-तुलसी हैं, तो उसका ध्रुव सत्य कबीर है। हमारा भावपक्ष यदि भक्तिकाल में निखरकर आया है, तो कला-पक्ष के उच्चतम शिखर रीतिकाल में स्पर्शित हुए हैं। केशव, बिहारी, देव, घनानंद, भूषण रीतिकाल के भूषण हैं। आधुनिक काल में गद्य के आविर्भाव के साथ साहित्य की अनेक विधाएँ अस्तित्व में आती हैं। उपन्यास साहित्य उनमें से एक है। आधुनिक काल अनेक नये वैश्विक वैचारिक प्रवाहों का काल रहा है। उपन्यास इन वैचारिक प्रवाहों के समुचित संवाहक के रूप में सामने आता है। पूर्व प्रेमचन्द काल में उपन्यास की जमीन तैयार होती है। हिन्दी उपन्यास को उसके सूर्य-चन्द्र तो प्रेमचन्द काल में प्रेमचन्द और जैनेन्द्र के रूप में उपलब्ध होते हैं। बहुत से आलोचक उनको हिन्दी के टैगोर और शरत् भी कहते हैं। इन दोनों उपन्यासकारों ने हिन्दी उपन्यास-साहित्य के गौरव को बढ़ाया है।

इनके उपन्यासों का अध्ययन अनेक दृष्टियों से होता रहा है और आगे भी होता रहेगा, क्योंकि साहित्य-जगत में तो आकाश को ही सीमा माना गया है -- Sky is the Limit। और आकाश की कोई सीमा नहीं होती। "वादे वादे तत्त्व जायते" कहा गया है। जितना ज्यादा मंथन होगा, उतने अधिक रत्न प्राप्त होंगे। हाँ, विष का खतरा भी बना रहता है। किन्तु उसके लिए तो हमारे पास नीलकंठ हैं। प्रस्तुत शोध-प्रबंध में मैंने उभय महान उपन्यासकारों के उपन्यासों के आधार पर उभय की नारी-सृष्टि पर एक तुलनात्मक दृष्टिपात करने की चेष्टा की है। उसमें कितनी सफल हुई हूँ, कितनी असफल, वह तो इस क्षेत्र के विद्वान और अध्येता ही बता सकते हैं। किन्तु एक बात पर मेरा विश्वास

है कि सदाशयता से किया गया कोई भी प्रयास व्यर्थ नहीं जाता । और यह भी जानती हूं कि — "इस पथ का उद्देश्य नहीं है, श्रान्त भवन में टिक रहना ; किन्तु पहुंचना उस सीमा तक जिसके आगे राह नहीं ।"

प्रेमचंद एक युगनिर्माता साहित्यकार हैं । आधुनिक काल में जिनको "युगनिर्माता" का बिरुद प्राप्त है ऐसे तीन सारस्वत-पुत्र हमें प्राप्त होते हैं — भारतेन्दु, पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी और प्रेमचन्द । भारतेन्दु ने हिन्दी साहित्य के भंडार को भरने के लिए अपनी अतुल संपत्ति दाव पर लगा दी । द्विवेदीजी सरकारी नौकरी छोड़कर कम वेतमान पर "सरस्वती" पत्रिका के संपादक बने और अनेक कवियों और लेखकों का निर्माण किया । हमारे राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण तो उनकी ही देन हैं, ऐसा हिन्दी के बहुत-से विद्वान मानते हैं । प्रेमचंद ने "हंस" और "जागरण" जैसी पत्रिकाएं घाटा उठाकर भी चलायीं हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने के लिए । एक समूची पीढ़ी का निर्माण प्रेमचन्द के हाथों हुआ । उनको प्रोत्साहन और मार्गदर्शन दिया । अपने कृतित्व और व्यक्तित्व द्वारा उनकी रहबरी की । कथनी द्वारा ही नहीं, करनी द्वारा भी साहित्यकारों तथा उन पाठकों का पथ-प्रदर्शन किया ।

प्रेमचंद के एक जीवनीकार ने उनको "कलम का मजदूर" कहा है । प्रेमचंद सचमुच में कलम के मजदूर थे । नियमित आठ घण्टे लिखना उनकी दिनचर्या का एक हिस्सा था । यात्रा और बीमारी के कुछ दिनों को छोड़कर वह निरंतर आठ घण्टा लिखते रहते थे । महात्मा गांधी की तरह वे भी इस सिद्धान्त में विश्वास रखते थे कि जो व्यक्ति आठ घण्टे काम नहीं करता उसे शामको भोजन करने का अधिकार नहीं है । नयी कविता के सशक्त हस्ताक्षर भवानीप्रसाद

प्रसाद मिश्र ने लिखा है — " कुछ लिखके सो , कुछ पढ़के सो ; तू जिस जगह जागा सवेरे , उस जगह से बढ़के सो । " भवानीदादा ने बहुत बाद में यह लिखा था , लेकिन प्रेमचन्द तो उसी बात को बरसों से जी रहे थे ।

हमारे दूसरे आलोच्य कथाकार हैं जैनेन्द्रजी हैं । जैनेन्द्रजी के लेखक का आविर्भाव तो प्रेमचन्द काल में ही हुआ , परन्तु बहुत ज्यादा समय वह प्रेमचन्दजी के साथ नहीं रहे क्योंकि सन् 1936 में प्रेमचन्दजी का निधन हुआ , अतः उनका अधिकांश लेखन प्रेमचन्दोत्तर काल में हुआ । प्रेमचन्द यदि युगनिर्माता साहित्यकार है , तो जैनेन्द्र युग-चिन्तक साहित्यकार है । उपन्यास , कहानी , नाटक और आलोचना के अतिरिक्त उन्होंने कई ऐसे ग्रन्थ दिए हैं जिनका सरोकार हमारी सामाजिक , पारिवारिक , राजनीतिक चिन्ताओं से है । ऐसे ग्रन्थों में "समय और हम " , " प्रेम और विवाह " , "नारी" , " काम प्रेम और परिवार " , "अकाल पुरुष गांधी " , " प्रश्न और प्रश्न " , " राष्ट्र और राज्य " , " नीति और राजनीति" " शिक्षा और संस्कृति " , " क्या अभी भविष्य है ? " [अनुदित] , जैनेन्द्र के विचार " प्रभृति की गणना कर सकते हैं । बाद में जैनेन्द्रजी ने अपना स्वयं का प्रकाशन शुरू किया था — पूर्वोदय प्रकाशन । जिसका काम उनके सुपुत्र देखते हैं , अतः जैनेन्द्रजी नौकरी-चाकरी के अन्य धन्धों से दूर रहकर स्वतंत्र रूप से लेखन करते रहे और इस प्रकार कथा-साहित्य के अतिरिक्त भी दर्शन-चिंतन पर उनके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित होते रहे हैं । जैनेन्द्र के उपन्यास और कहानियों पर उनके दर्शन और चिन्तन का निश्चित प्रभाव है , बल्कि जैनेन्द्रजी के आलोचकों का तो उन पर यह आरोप है कि उनका कथा-साहित्य चिंतन के कारण बोझिल हो गया है । "परख" , "त्यागपत्र" , "सुनीता " , "कल्याणी " , "मुक्तिबोध" आदि उपन्यास तो पठनीय हैं , परन्तु उनके कई उपन्यास तो सामान्य पाठक शायद

पढ़ ही न पाएं । ऐसे उपन्यासों में "अनामस्वामी" , "जयवर्द्धन " , "दशार्क" आदि हैं ।

यह तो एक सर्वानुमोदित तथ्य है कि नवजागरण के कारण जो प्रमुख रूप से दो मुद्दे उभरकर आए उनमें नारी विमर्श और दलित विमर्श है । उपन्यासों में नारी-विमर्श का प्रारंभ पूर्व-प्रेमचंदकाल से ही हो गया था । ब्रह्मोसमाज , आर्यसमाज , प्रार्थना समाज , थियोसोफिकल सोसायटी जैसे धार्मिक सामाजिक आंदोलन तथा राजा-राममोहनराय , केशवचन्द्र सेन , ईश्वरचन्द्र विद्यासागर , ज्योतिबा फुले , सावित्रीबाई फुले , पंडिता रमाबाई , मैडम ब्लावट्स्की , श्रीमती एनी बेसन्ट , मैडम कामा , मैडम कर्वे , सरोजिनी नायडू , विवेकानंद , टैगोर , शरद , सिमान द बुआ जैसे महानुभावों व तथा विदुषियों के प्रभाव आधुनिक काल — उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध — में नारी-विषयक विभावना में बदलाव आ गया था । नारी शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ रहा था । तत्कालीन भारतीय साहित्यकार अपने उपन्यासों , कहानियों , नाटकों , एकांकियों , निबन्धों तथा लेखों में बराबर इन मुद्दों पर सकारात्मक ढंग से लिख रहे थे । हिन्दी का प्रथम उपन्यास — पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी — द्वारा प्रणीत " भाग्यवती " —— नारी-शिक्षा के प्रचार हेतु लिखा गया उपन्यास है । स्वाधीनता आंदोलन के प्रणेता महात्मा गांधी ने महिलाओं को प्रेरित किया कि वे घर की चहार-दीवारी से बाहर निकलें और राष्ट्रीय आंदोलनों में बराबर की शिरकत करें । यह अनायास या अचानक नहीं है कि प्रेमचन्दजी के लगभग तमाम-समग्र उपन्यासों में नारी घर से बाहर आ रही है । "रंगभूमि" तथा "कर्मभूमि" जैसे उपन्यास इसके ज्वलंत उदाहरण हैं । महात्मा गांधी के अहिंसात्मक आंदोलन के साथ-साथ देश की स्वाधीनता के लिए हिंसात्मक क्रान्तिकारी आंदोलन भी चल रहे थे और भारतीय जनता का साथ और सहानुभूति उनके साथ भी थी । जैनेन्द्र के उपन्यासों

में "सुनीता" , "त्यागपत्र" , विवर्त " , "दशार्क" आदि उपन्यासों में उनकी नायिकाएं या सहनायिकाएं क्रान्तिकारी दल के नायकों या नेताओं से संलग्नित पायी जाती हैं । "दशार्क" की पारमिता तो स्वयं क्रान्तिकारी दल का नेतृत्व कर रही है । प्रेमचंद के "रंगभूमि" उपन्यास की सोफिया का भी क्रान्तिकारियों के प्रति "सॉफ्ट कार्नर " देखा जा सकता है । प्रेमचंद के ही "गबन" उपन्यास में जालपा , जग्गो आदि नारियाँ क्रान्तिकारियों के पक्ष में हैं । इसे तत्कालीन युग का प्रभाव ही कहा जा सकता है ।

प्रस्तुत प्रबंध में हिन्दी औपन्यासिक साहित्य के इन दो दिग्गजों को लेकर उनके नारी पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन हुआ है । प्रथम अध्याय "विषय-प्रवेश" को लेकर है । उसमें आधुनिककाल में हिन्दी उपन्यास के xxxxxx विकास के कारणों में गद्य का विकास , अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार-प्रसार , पुनर्जागरण की प्रवृत्तियाँ , औद्योगीकरण , नगरीकरण की प्रवृत्ति आदि को रेखांकित किया गया है । यहाँ पर प्रेमचन्दोत्तर काल की औपन्यासिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हुए आलोच्य लेखकों की नारी-विषयक विभावना को भी स्पष्ट करने का उपक्रम रहा है । इस अध्याय के निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि राजा लक्ष्मण सिंहजी , लल्लूलालजी गुजराती , .पंडित सदल मिश्र , मुंशी सदासुखलाल तथा मुंशी इंशाअल्लाखाँ के प्रयत्नों से खड़ी बोली हिन्दी का गद्य विकसित हो पाया जिसने पत्र-पत्रिकाओं तथा उपन्यासों के प्रकाशन के पथ को प्रशस्त किया । यहाँ यह भी देखा गया कि प्रेमचन्दपूर्वकालीन उपन्यास स्थूल , कथावस्तुप्रधान , भावुकतापूर्ण, रोमानी , अपरिपक्व , चरित्र-चित्रण की प्रवृत्ति से रहित तथा अन्तर्बोध कहे जा सकते हैं । हिन्दी उपन्यास को उसकी वास्तविक पहचान प्रेमचंद से ही प्राप्त होती है ।

प्रेमचन्दकाल में मुख्यतया इन्हीं दो प्रकार के उपन्यास प्राप्त होते हैं — सामाजिक समस्यामूलक उपन्यास तथा ऐतिहासिक उपन्यास जिनका सूत्रपात क्रमशः प्रेमचन्दजी तथा वृन्दावनलाल वर्मा द्वारा हुआ । प्रेमचन्दजी के लेखन में एक स्पष्ट विकास लक्षित होता है । वे आदर्शवाद, आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद से होते हुए अन्ततः यथार्थवादी कला-मूल्यों को छूते हुए दृष्टिगोचर होते हैं । यहाँ हम यह भी देख सकते हैं कि 19वीं शताब्दी में उद्भूत अनेक सामाजिक-धार्मिक आंदोलनों ने नारी-विषयक विभावना को परिवर्तित किया है । इसमें पश्चिम के नारी-मुक्ति आंदोलन, मार्क्सवादी चिंतन, मनोवैज्ञानिक चिंतन तथा गांधीवादी विचारधारा का भी योग है । अतः हम देखते हैं कि प्रेमचन्दकाल की नारी जर्जर प्रगतिविरोधी रूढ़ियों से जूझ रही है । उसका कार्य-क्षेत्र विस्तृत हो रहा है । प्रेमचन्द में हमें स्वयं जीवन-संघर्ष करती हुई और तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलनों में सक्रिय हिस्सेदारी करती हुई दृष्टिगत होती है । जिन रूढ़ियों तथा परंपराओं से नारी अधिकाधिक बंधनग्रस्त हो रही थी, उन रूढ़ियों और परंपराओं तथा संस्कारों को इधर की नारी एक सिरे से नकार रही है । परंपरा का नारी-विकासविरोधी आयाम अब उसे स्वीकार्य नहीं है । जैनेन्द्र के यहाँ नारी की मुख्यतः यही भूमिका रही है ।

प्रेमचन्द तथा जैनेन्द्र के नारी पात्रों पर विचार करना हो तो उनके आलोच्य उपन्यासों की कथावस्तु पर भी संक्षेप में विचार करना आवश्यक हो जाता है । अतः दूसरे अध्याय में उभय औपन्यासिकों के औपन्यासिक कथ्य पर विचार किया गया है । इसमें प्रेमचंद के सेवासदन, वरदान, प्रतिज्ञा, निर्मला, गबन, प्रेमाश्रम, कायाकल्प, कर्मभूमि, रंगभूमि, गोदान, मंगलसूत्र (अपूर्ण) आदि उपन्यासों तथा जैनेन्द्र परख, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा, विवर्त, व्यतीत, जयवर्द्धन, मुक्तिबोध, अनंतर, अनामस्वामी तथा दशार्क प्रभृति उपन्यासों के कथ्य का विश्लेषण हुआ है ।

इस अध्याय के विहंगावलोकन से प्रतीत होता है कि प्रेमचन्द के औपन्यासिक कथ्य में यथार्थधर्मिता का , उनकी वस्तुनिष्ठ दृष्टि तथा सोद्देश्यता के दर्शन होते हैं । उनमें सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं का चित्रण प्रमुख रूप धारण करता है । किसानों और मजदूरों का शोषण , दलितों का शोषण , स्त्रियों का शोषण , दलित स्त्रियों का शोषण , वेश्या समस्या , अनमेल-ब्याह की समस्या , वृद्ध-विवाह की समस्या , दहेज समस्या , नारी-शिक्षा की समस्या , पाश्चात्य सभ्यता का विरोध , पूँजीवाद का विरोध , स्वाधीनता-संग्राम और उसके सरोकार , अस्पृश्यता की समस्या , दलितों के मंदिर-प्रवेश की समस्या , किसानों के ऋण की समस्या , राजनीतिक खोखलापन , भारत के भविष्य की चिन्ता जैसे सामाजिक-राजनीतिक सरोकार प्रेमचन्द के उपन्यासों में उपलब्ध होते हैं । तो दूसरी तरफ जैनेन्द्र में प्रायः मानवीय रिश्तों और संबंधों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मिलता है । प्रेमचन्द की चिन्ता के केन्द्र में समाज है , जैनेन्द्र की चिन्ता के केन्द्र में व्यक्ति है । समस्याएं यहाँ भी हैं , किन्तु वे आंतरिक और मानसिक हैं । समाज , व्यक्ति , प्रेम , विवाह , वैवाहिक अहं , इस अहं के चलते पति-पत्नी के संबंधों में दरार , स्त्री-पुरुष के संबंध , प्रेमी-प्रेयसी के संबंध और इन सबसे उठते ईर्ष्या-द्वेष आदि मानवीय भावों का सूक्ष्म गुम्फन जैनेन्द्र के उपन्यासों के कथ्य का आधार है ।

तृतीय अध्याय में प्रेमचन्द की औपन्यासिक नारी-दृष्टि पर दृष्टिपात किया गया है । इन नारी पात्रों में विरजन , सुवामा, सुशीला , माधवी (वरदान) ; सुमन , शान्ता , भोली , गंगाजली (सेवासदन) ; विद्या , श्रद्धा , गायत्री , विलासी , शीलमणि (प्रेमाश्रम) ; सोफिया , जाह्नवी , इन्दु , सुभागी (रंगभूमि) ; मनोरमा , रानी देवप्रिया , अहल्या , लौंगी (कायाकल्प) ; जालपा , रतन , ×जग्गी , मानकी , जोहरा (गबन) ;

निर्मला , कृष्णा , रंगीली , ×संधx सुधा , कल्याणी , रुक्मिणि [निर्मला] ; सुखदा , सकीना , पठानिन , मुन्नी , सलोनी , रेणुका , नैना [कर्मभूमि] ; पूर्णा , प्रेमा , सुमित्रा [प्रतिज्ञा] ; धनिया , मालती , सिलिया , झुनिया , रूपा , सोना , नोहरी , मीनाक्षी , पुनिया [गोदान] ; पुष्पा , तिब्बी , शैव्या , मिस बटलर [मंगलसूत्र] [प्रवृत्ति की चर्चा की गई है ।

चतुर्थ अध्याय में जैनेन्द्र की औपन्यासिक नारी-सृष्टि का रेखांकन हुआ है । जैनेन्द्र के औपन्यासिक नारी-पात्रों में कट्टो , गरिमा, कट्टो की माँ , गरिमा की माँ , सत्यधन की माँ [परख] ; सुनीता, सत्या , माधवी , सुनीता की माँ [सुनीता] ; मृणाल , मृणाल की भाभी , शीला , प्रमोदिनी [त्यागपत्र] ; कल्याणी , वकील साहब की पत्नी , देवलालीकर की पत्नी [कल्याणी] ; सुखदा , सुखदा की माँ [सुखदा] ; भुवनमोहिनी , तिन्नी , मिथिला [विवर्त] ; अनिता , सुमिता , अदिता , चन्द्री , पुलिया , शीला, कपिला [व्यतीत] ; इला , वसिष्ठायन [जयवर्धन] ; नीलिमा, राजश्री, सुनीतारा , अंजलि [मुक्तिबोध] ; अपरा , वाणी , वनानि , राजेश्वरी [अनन्तर] ; अदिति , वसुंधरा , मंजुला [अनामस्वामी] ; रंजना-सरस्वती, मेरा लिली , ज्योतिका , मारिया , मैत्री , मालती , सकीना [दशार्क] आदि का विश्लेषणात्मक चित्रण किया गया है ।

अंतिम तीन अध्यायों में उपर्युक्त विवेचन के xxxxxx आधार पर प्रेमचन्द तथा जैनेन्द्र के औपन्यासिक नारी-पात्रों पर तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया गया है । यह अध्ययन विभिन्न आयामों और पक्षों को लेकर किया गया है । पंचम अध्याय में प्रेमचन्द तथा जैनेन्द्र के औपन्यासिक नारी पात्रों का "पात्रों के वर्गीकरण " की दृष्टि से विचार किया गया है । औपन्यासिक आलोचना में पात्रों के वर्गीकरण को नाना आधारों पर विश्लेषित

और वर्गीकृत किया गया है । प्रस्तुत अध्याय में उन्हीं बिन्दुओं को आधार बनाकर उभय के नारी पात्रों की तुलना की गई है ।

प्रेमचन्द तथा जैनेन्द्र दोनों में वर्गीकृत चरित्र मिलते हैं, किन्तु प्रेमचन्द में ऐसे नारी पात्रों की बहुतायत है । जैनेन्द्र के वर्गीकृत नारी पात्रों में "मां" वर्ग की समस्या प्रायः आर्थिक नहीं है, जबकि प्रेमचंद के यहाँ उनकी मुख्य समीक्षा आर्थिक ही रही है । दूसरा मुख्य अंतर उभय के वर्गीकृत नारी-चरित्रों में यह पाया जाता है कि प्रेमचन्द के यहाँ वहाँ मुख्य नारी पात्र भी वर्गीकृत नारी चरित्रों में पाए जाते हैं, जबकि जैनेन्द्र में वर्गीकृत नारी चरित्र गौण या पार्श्वभौमिक प्रकार के अधिक हैं । तीसरे प्रेमचन्द के वर्गीकृत नारी चरित्र प्रायः गांव या कस्बे के हैं, जबकि जैनेन्द्र के यहाँ ऐसे पात्र प्रायः बड़े शहरों के हैं । जैनेन्द्र के प्रौढ़ वर्गीकृत नारी चरित्रों में राजश्री और रामेश्वरी जैसे नारी पात्र भी उपलब्ध होते हैं जिनको अपने पतियों के बाहरी संबंधों से कोई सरोकार नहीं है । वर्गीकृत चरित्र के बाद वैयक्तिक चरित्र की बात करें तो प्रेमचन्द के प्रायः वैयक्तिक नारी चरित्र ग्रामीण या कस्बाई परिवेश के हैं और उनमें मुख्य पात्रों के अतिरिक्त गौण पात्र भी उपलब्ध होते हैं; जबकि जैनेन्द्र के वैयक्तिक नारी पात्रों में उनकी नायिकाएँ हैं और उनका परिवेश नगरीय या महानगरीय है । प्रेमचन्द तथा जैनेन्द्र दोनों में स्थिर तथा गतिशील चरित्र मिलते हैं, किन्तु जैनेन्द्र में गतिशील चरित्रों की संख्या अधिक है । द्विपरिणामी पात्र किसी भी लेखक के लिए हस्टेट समान होते हैं । प्रेमचन्द के ऐसे नारी पात्रों में सुमन, सोफिया, निर्मला, धनिया आदि आते हैं; तो जैनेन्द्र के ऐसे पात्रों में कट्टो, सुनीता, मृणाल, नीलिमा, रंजना आदि आते हैं । उभय कथाकारों में त्रिपरिमाणी पात्र मिलते हैं । प्रेमचंद के मुख्य नारी पात्र अधिक सामाजिक, सहज और विश्वसनीय प्रतीत होते हैं; जबकि जैनेन्द्र के ऐसे नारी पात्र संभावनाओं के क्षेत्र में आते हैं । जैनेन्द्र के नारी पात्रों के पति कहीं-कहीं अत्यधिक उदार या

उदासीन पाए जाते हैं ।

षष्ठ अध्याय में निम्नलिखित आयामों को ध्यान में रखकर तुलना की गई है — परिवेश की दृष्टि से, विद्रोहिता की दृष्टि से, नायिकाओं के पतियों की दृष्टि से, शिक्षा की दृष्टि से, व्यावसायिक दृष्टि से, आर्थिक समस्या की दृष्टि से। परिवेश की दृष्टि से विचार करें तो प्रेमचन्द की नारियों का कालगत परिवेश बीसवीं शताब्दी के आरंभ से लेकर चौथे दशक तक का है ; जबकि जैनेन्द्र की नारियों का कालगत परिवेश यहीं से शुरू होकर नवें दशक तक का है । दूसरे प्रेमचन्द की नारियों का स्थानगत परिवेश ग्रामीण या कस्बाई है, जबकि जैनेन्द्र में प्रायः नगरीय या महानगरीय परिवेश उपलब्ध होता है । अतः नारी-दृष्टि में भी एक गुणात्मक अंतर दृष्टिगोचर होता है । प्रेमचन्द की तुलना में जैनेन्द्र में विद्रोही नारी पात्र अधिक मिलते हैं । उसी तरह प्रेमचन्द की तुलना में जैनेन्द्र के नारी पात्रों के पति अधिक उदार दृष्टिकोण वाले प्रतीत होते हैं । शिक्षा की दृष्टि से विचार करें तो प्रेमचन्द के नारी पात्र कुछ कम शिक्षित दृष्टिगत होते हैं । उभय कथाकारों के कुछ अशिक्षित या अर्द्ध-शिक्षित नारी पात्र मानवीय परिमाणों पर अधिक खरे उतरते हैं । प्रेमचन्द की तुलना में जैनेन्द्र के शिक्षित नारी पात्र कुछ अधिक आधुनिक प्रतीत होते हैं । दूसरे जैनेन्द्र में ऐसे शिक्षित नारी पात्रों का आधिक्य मिलता है जो शिक्षित होते हुए भी नौकरी नहीं करते । प्रेमचन्द के नारी पात्र तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों से प्रेरित दृष्टिगत होते हैं, तो जैनेन्द्र के कई नारी पात्र क्रान्तिकारियों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़े हुए दिखते हैं । प्रेमचन्द के समय की गौनहारिन वेश्याओं का जैनेन्द्र में नितान्त अभाव-सा दिखाई पड़ता है । उभय कथाकारों में नौकरीपेशा महिलाएं (कामकाजी महिलाएं) कम दृष्टिगोचर होती हैं । दोनों में शिक्षिकाओं की गैरदर्जगी कुछ-कुछ हैरत में डालनेवाली है । जैनेन्द्र के नारी पात्रों के सामने

आर्थिक समस्याएं भी कम नज़र आती हैं ।

सप्तम अध्याय में भी उभय औपन्यासिकों के नारी पात्रों की तुलना विविध आयामों को लक्षित करके की गई है । इन आयामों में अवस्था, विधवा नारी पात्र, नारियों का प्रेमिका रूप, रक्षिता नारी-पात्र, मनोवैज्ञानिक समस्याएं, विश्वसनीयता की दृष्टि, आदर्शवाद और यथार्थवाद की दृष्टि, आत्मपीड़क और संघर्षशील चरित्र की दृष्टि, वेश्या-समस्या, पतिव्रता विषयक अवधारणा, कथानक-रूढ़ियों की दृष्टि, विदेशी महिलाओं का चित्रण, आंतर-राष्ट्रीय विवाह, देश-विदेश घूमी नारियां, विधर्मी महिलाओं का चित्रण, अन्तर्जातीय विवाह, स्वकीया-परकीया, अविस्मरणीय नारी पात्र प्रभृति की गणना कर सकते हैं । इन आयामों के आधार पर कहा जा सकता है कि उभय कथाकारों में कन्या पात्रों का चित्रण अपेक्षाकृत कम हुआ है । प्रेमचन्द के कन्या-पात्र तथा किशोरियों में ग्रामीण अल्हड़ता के दर्शन होते हैं, परन्तु आर्थिक अभावों के कारण उनमें समझदारी भी बहुत जल्दी आ जाती है । जैनेन्द्र ने प्रारंभ में कट्टो और गरिमा की इस अवस्था का सटीक चित्रण किया है । दोनों में चंचलता और अल्हड़पन पाया जाता है । "विवर्त" की तिन्नी को तो उसके बाप ने बेच ही दिया है, किन्तु खरीदार आदर्शवादी और क्रान्तिकारी होने के कारण, तथा तिन्नी की अपनी समझदारी के कारण वह खुशी-खुशी उनके साथ रहती है । जैनेन्द्र के कन्या पात्रों में "व्यतीत" उपन्यास की चुन्निया सबसे दुःखी है क्योंकि बाप की शराबखोरी के कारण उसे जिस्मफरोशी करनी पड़ती है ।

प्रेमचन्द के युवा नारी-पात्रों में ग्रामीण नारियां जुझारू और जीवटवाली हैं । नगरीय क्षेत्र की युवा-नारियां भी किसी-न-किसी तरह के राष्ट्रीय आंदोलनों या सेवा-प्रवृत्तियों में संलग्नित हैं । दूसरी ओर जैनेन्द्र के युवा नारी-पात्र अपनी वैयक्तिक गुत्थियों में उलझे हुए पाए जाते हैं । प्रेमचन्द के प्रौढ़ा तथा वृद्धा नारी पात्रों

में भी संघर्ष की भावना मिलती है ; दूसरी ओर जैनेन्द्र के ऐसे नारी पात्र प्रायः निष्क्रिय हैं । इसका अर्थ यह कतई नहीं कि जैनेन्द्र की नारियाँ निष्प्राण और निस्तेज हैं, केवल प्रवृत्तिगत अंतर पाया जाता है । जितना अंतर डिफो और रिचर्डसन में पाया जाता है, लगभग उतना ही अंतर प्रेमचन्द और जैनेन्द्र के नारी पात्रों में दृष्टिगत होता है । एक बाह्य सामाजिक यथार्थ के चितेरे हैं, तो दूसरे आंतरिक मनःस्थितियों के ।

विधवा पात्रों की दृष्टि से देखें तो प्रेमचन्द में विधवाओं की आर्थिक विपन्नता और उससे उत्पन्न स्थितियों का यथार्थ आकलन हुआ है, तो जैनेन्द्र में यह समस्या नहींवत् है । जैनेन्द्र ने कट्टो और माधवी के रूप में बाल-विधवाओं का चित्रण किया है, प्रेमचन्द में इसका सर्वथा अभाव है क्योंकि प्रेमचन्द ने जिस समाज का चित्रण किया है वहाँ यह समस्या नहीं पाई जाती । प्रेमचन्द में सामंतवर्ग की विधवाओं का जहाँ वर्णन मिलता है, वहाँ उनमें विलासी प्रवृत्ति को लक्षित किया गया है, जैनेन्द्र में इस वर्ग का अभाव है । प्रेमचन्द ने उच्चवर्गीय एवं उच्चवर्णीय समाज में रतन (गबन) के रूप में विधवा का जो चित्रण किया है वह दिल दहला देनेवाला है, जैनेन्द्र के यहाँ ऐसे पात्रों का अभाव है । इसमें भी दृष्टिकोण एवं परिवेश की भिन्नता ही कारणभूत है ।

जैनेन्द्र में प्रेमिका नारी पात्र अपेक्षाकृत अधिक मिलते हैं । उनमें प्रायः प्रणय-त्रिकोण का निर्माण होता है । प्रणय बहुत कम परिणय में परिवर्तित होता है । उनकी नायिकाओं में प्रायः विवाहेतर संबंध मिलते हैं, किन्तु ये प्रेम-संबंध अधिकतर अशरीरी प्रकार के पाए गए हैं । प्रेमचन्द के नारी पात्रों में लौंगी, मोहरी, सिलिया आदि पात्रों को रक्षिता की कोटि में रख सकते हैं, जिनमें लौंगी रक्षिता होते हुए भी एक सती-साध्वी स्त्री है । मोहरी ब्याहता होते हुए भी मोटेराम की रखैल मानी जाती है । सिलिया में वही लौंगी-सी भक्ति पायी जाती है । जैनेन्द्र के उपन्यासों में

MEHTA LIBRARY

"विवर्त" की जिन्नी और "मुक्तिबोध" की नीलिमा को कोई चाहे तो रचिता की श्रेणी में रख सकते हैं । जैनेन्द्र में मनोवैज्ञानिक समस्याओं का प्राधान्य है, प्रेमचन्द में सामाजिक और आर्थिक । प्रेमचन्द के अधिकांश नारी पात्र अधिक विश्वसनीय बन पड़े हैं, जैनेन्द्र के नारी पात्र वहीं मात्र अविश्वसनीय-से प्रतीत होते हैं । उनको हम संभावनाओं के क्षेत्र में रख सकते हैं । प्रेमचंद में यथार्थ की आदर्शक नियोजना मिलती है, जैनेन्द्र का झुकाव आदर्शवाद की ओर है, किन्तु जहाँ तक नारी-चित्रण का प्रश्न है प्रेमचन्द के नारी पात्र प्रायः आदर्शवादी हैं और जैनेन्द्र के अधिकांश नारी पात्रों में हमें विद्रोहात्मक संकेत मिलते हैं । प्रेमचन्द में स्नेहशील नारी चरित्र पाए जाते हैं, जैनेन्द्र के नारी पात्रों में आत्मपीड़ा की प्रवृत्ति प्रायः मिलती है । प्रेमचन्द के यहाँ वेश्या-समस्या की अभिव्यक्ति है, जैनेन्द्र ने इस रूप में वेश्या-जीवन का चित्रण नहीं किया है । वस्तुतः जैनेन्द्र किसीको वेश्या मानने के पक्ष में ही नहीं हैं । पतिव्रता-विषयक उनकी अवधारणाओं में भी काफी अंतर है । प्रेमचन्द की औपन्यासिक सृष्टि में हमें कोई भी विदेशी महिला का चित्रण नहीं मिलता है । जैनेन्द्र में "जयवर्धन" की एलिजाबेथ और "मुक्तिबोध" की लारा क्रमशः अमेरिकन और रशियन युवतियाँ हैं । जैनेन्द्र में अंतर्राष्ट्रीय विवाह मिलते हैं, प्रेमचन्द में उसका अभाव है । उसी तरह जैनेन्द्र में देश-विदेश में घूमी हुई स्त्री नारियाँ मिलती हैं, प्रेमचंद में "गोदान" की मालती को छोड़कर दूसरा ऐसा कोई नारी पात्र मिलता नहीं है । यह कालगत परिवेश के अंतर के कारण हुआ है । प्रेमचन्द में ईसाई और मुस्लिम नारी पात्र मिलते हैं । जैनेन्द्र में ईसाई नारी पात्र तो मिलते हैं, मुस्लिम नारी पात्रों का अभाव-सा परिलक्षित होता है । केवल "दशार्क" उपन्यास में कुछ मुस्लिम वेश्याओं का उल्लेख मिलता है । प्रेमचन्द में अनमेल अन्तर्जातीय प्रेम-संबंध तो बताए हैं परन्तु विवाह में उसकी परिणति नहीं हो पाई है । जैनेन्द्र में

ऐसी नारियाँ मिलती है जिनमें अन्तर्जातीय ही नहीं आंतरराष्ट्रीय विवाह-संबंध स्थापित हुए हैं। प्रेमचन्द में तलाकशुदा औरतों का अभाव है, जैनेन्द्र में उनकी उपस्थिति भी दर्ज हुई है। प्रेमचन्द में प्रायः स्वकीया नायिकाओं का चित्रण मिलता है। "प्रेमाश्रम" की गायत्री, "कायाकल्प" की रानी देवप्रिया और लौंगी तथा "गोदान" की मालती इसके अपवाद हैं। दूसरी ओर जैनेन्द्र की नायिकाओं में तो परकीया नायिकाओं की ही बोलबाला है। प्रेमचन्द की नारी-सृष्टि में "गोदान" की नोहरी को छोड़कर हम किसीको कुल्टा प्रकार की नारी नहीं कह सकते; जैनेन्द्र "कुल्टा" की विभावना को ही नकारते हैं।

कुछ भी हो, उभय कथाकारों ने अपनी औपन्यासिक सृष्टि में कुछ अविस्मरणीय नारी पात्रों की सृष्टि की है जिसके कारण उनको सदा याद किया जाएगा। प्रेमचंद के ऐसे नारी पात्रों में विरजन, सुवामा {वरदान}; सुमन {सेवासदन}; विद्या, विलासी {प्रेमाश्रम}; सोफिया, जाह्नवी, सुभागी, कुलसुम {रंगभूमि}; मनोरमा, लौंगी {कायाकल्प}; जालपा, जग्गो {गबन}; निर्मला {निर्मला}; सकीना, सुखदा, मुन्नी, सलोनी {कर्मभूमि}; सुमित्रा {प्रतिज्ञा}; धनिया, मालती, सिलिया {गोदान} आदि की गणना कर सकते हैं; तो दूसरी ओर जैनेन्द्र के अविस्मरणीय नारी पात्रों में कट्टो {परख}; सुनीता {सुनीता}; मृणाल {त्यागपत्र}; कल्याणी {कल्याणी}; भुवन, तिन्नी {विवर्त}; अनिता, चन्द्री, कपिला, बुधिया {व्यतीत}; इला {जयवर्द्धन}; नीलिमा {मुक्तिबोध}; अपरा, वनानि {अनंतर}; उदिता, वसुंधरा {अनामस्वामी}; रंजना, पारमिता {दशार्क} इत्यादि की गणना कर सकते हैं हैं।

प्रत्येक अध्याय के अन्त में निष्कर्ष दिए गए हैं। सन्दर्भानुक्रम या संदर्भ-संकेत को प्रस्तुत करने के दो तरीके हैं, एक में प्रत्येक पृष्ठ के नीचे ही उसे संकेतित किया जाता है और दूसरे में क्रमिक नंबर देते हुए अध्याय के अंत में उसे प्रस्तुत किया जाता है। आजकल दूसरी विधि का प्रचलन ज्यादा है, क्योंकि टंकण की दृष्टि से वह ज्यादा सुविधाजनक होता है। शोध-प्रबंध के अन्त में "संदर्भिका" {Bibliography} दी है, जिसमें उपजीव्य ग्रन्थों के अतिरिक्त सहायक-ग्रन्थों की सूची तथा पत्र-पत्रिकाओं का उल्लेख अकारादि क्रम से किया गया है।

अन्त में प्रबंध विद्वज्जनों के सम्मुख है। अपनी सीमाओं और मर्यादाओं से मैं भलीभांति परिचित हूं, फिर भी यथा शक्ति-मति यह कार्य मैंने संपन्न किया है। सुमर्तता से किया गया कोई भी कार्य निरर्थक नहीं होता, उसमें कुछ भी तो सार्थक और उपादेय होता है। इस कार्य के उपरांत मेरी शोध-दृष्टि में कुछ तो विकास हुआ होगा ऐसा मानना अकारण न होगा।

प्रेमचन्द और जैनेन्द्र हिन्दी कथा-साहित्य के दो महा दिग्गज कथाकार हैं। हिन्दी के विद्वानों और आलोचकों ने यथार्थतः उनको हिन्दी कथा-गगन के सूर्य और चन्द्र कहा है। सूर्य शक्ति, ऊर्जा और प्रकाश का प्रतीक है; तो चन्द्र कला, सौन्दर्य, कोमलता और शीतलता का प्रतीक है। दोनों एक-दूसरे की आपूर्ति करते हैं। इन दोनों पर हिन्दी में प्रचुर मात्रा में शोध-कार्य हुआ है, परन्तु मेरा यह शोध-कार्य एक सर्वथा नवीन आयाम को लेकर है। इससे उभय के औपन्यासिक नारी पात्रों पर प्रकाश तो पड़ा ही है, परस्पर की पारस्परिक उपस्थिति से उनके आंतर-बाह्य गुण अधिक स्पष्ट हुए हैं। यह तुलना निष्पक्ष-निरपेक्ष दृष्टि से हुई है। इसमें किसीको कमतर-बढ़कर बताने की प्रवृत्ति नहीं है। बल्कि दोनों को साथ रखकर एक युग-विशेष की नारियों को परखने का उपक्रम ही अधिकांशतः सामने आया है। प्रेमचन्द का निधन सन्

1936 में हुआ और जैनेन्द्र का सन् 1988 में, अतः प्रेमचंद का अनुभव-संसार बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक तक का है और जैनेन्द्र का व्यक्तिगत अनुभव-संसार नवें दशक तक का है। जैनेन्द्र का अंतिम उपन्यास "दशार्क" सन् 1985 में प्रकाशित हुआ था। पचास वर्षों का अन्तराल है और युग परिवर्तन की गति शीघ्र से शीघ्रतर होती गई है। पहले जो परिवर्तन पचास वर्षों में होते थे अब पाँच-दस वर्षों में होते हैं। संसार बहुत ही तेजी से बदल रहा है। इन वर्षों में दोनों की नारी-दृष्टि में क्या अंतर आया है, उसे देखना-परखना भी बड़ा दिलचस्प हो सकता है।

कुछ लोग कहते हैं कि किसी लेखक पर ज्यादा कार्य नहीं हो सकता है, किन्तु मैं इससे सहमत नहीं हूँ। किसी भी लेखक पर नये-नये आयामों को लेकर कार्य हो सकता है। इसी प्रकार का कार्य प्रेमचन्द और जैनेन्द्र के पुरुष पात्रों को लेकर हो सकता है। प्रेमचन्द और जैनेन्द्र के काल्पनिक परिवेश को लेकर हो सकता है, सामाजिक परिवेश को लेकर हो सकता है, उनकी ही भाषिक-संरचना पर हो सकता है। ऐसे तो कई अनछुए और अपेक्षित पक्ष और आयाम हो सकते हैं। मेरा यह कार्य भविष्य अनुसंधित्सुओं को प्रकाश की एक किरण भी उपलब्ध करा सकेगा तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूँगी।

: इति शुभम् :

XXXXXXXXXXXXX